OFF-PRINT

प्रतिमुद्रण

132

ह्रीः

दुर्लभबौद्धग्रन्थशोधपत्रिका

Journal of Rare Buddhist Texts Research Project

21

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
1996

भारतीय तन्त्रशास्त्र : एक विहंगम दृष्टि

—व्रजवल्लभ द्विवेदी—

[केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी के तत्त्वावधान में कार्यरत दुर्लभ ग्रन्थ शोध योजना के द्वारा सन् 1992 ई० में 6 से 12 फरवरी तक आयोजित सप्तदिवसीय कार्यशाला के "भारतीय तन्त्रशास्त्र" के नाम से प्रकाशित ग्रन्थ में संगृहीत निबन्धों में और विद्वानों में परस्पर हुए विचार-विनिमय में व्यक्त किये गये विचारों की यहाँ संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत की गई है ।]

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ के तत्त्वावधान में कार्यरत दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना के द्वारा सन् 1988 ई० में 2 से 8 अप्रैल तक आयोजित सप्तदिवसीय कार्यशाला का विवरण "सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान" शीर्षक से इस संस्थान की "सम्यग् वाक्" सिरीज के पंचम पुष्प के रूप में सन् 1990 ई० में प्रकाशित हुआ था। सुविज्ञ पाठकों ने उसे पसंद किया। इसलिये सन् 1992 ई० में 6 से 12 फरवरी तक आयोजित तन्त्रशास्त्र संबन्धी कार्यशाला का विवरण भी "भारतीय तन्त्रशास्त्र" के नाम से उसी पद्धति से "सम्यग् वाक्" सिरीज के 7वें पुष्प के रूप में सन् 1995 में प्रकाशित कराया जा चुका है।

इस कार्यशाला का आयोजन भी पूर्ववत् दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना में कार्यरत विद्वानों के सामने समय-समय पर आने वाली समस्याओं के समाधान के लिये ही मुख्य रूप से किया गया था, किन्तु हमें आशा है कि इन विषयों के अनुरागी अन्य महानुभावों के लिये भी यह सामग्री उतनी ही उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रस्तुत गोष्ठी की विशेषता इसी से आंकी जा सकती है कि यह आयोजन एक ऐसी संस्था के द्वारा किया गया, जो बौद्ध विद्या और उसमें भी भोट देश में विकसित बौद्ध विद्या के संरक्षण के लिये समर्पित है। इस गोष्ठी में भारतीय तन्त्रशास्त्र की बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव और शाक्त-स्मार्त नामक प्रधान शाखाओं का समावेश किया गया था एवं इनके अवान्तर भेदों पर भी निबन्ध लिखवाये गये थे। बौद्ध तन्त्रों पर पाँच, जैन और शैव तन्त्रों पर चार-चार, वैष्णव तन्त्रों पर तीन तथा शाक्त-स्मार्त तन्त्रों पर दो निबन्ध हमें प्राप्त हुए। ये सभी निबन्ध यहाँ समाविष्ट हैं। गोष्ठी के प्रथम पाँच दिनों में इन निबन्धों का वाचन हुआ और उन पर उपस्थित विद्वानों ने अपने बहुमूल्य विचार प्रस्तुत किये। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस योजना का यह दूसरा प्रयास भी "सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान" की[1] तरह ही प्रस्तुत हुआ है।

---

1. इस कार्यशाला की भी सारी कार्यवाही 16 केसेटों में संकलित हुई थी। विद्वानों में हुए परस्पर के विचार-विनिमय का पूरी सावधानी से संकलन, संपादन और संशोधन करने के बाद अधिकतर विद्वानों

भारतीय तन्त्रशास्त्र के अनुशीलन को सही दिशा देने के लिये यह आवश्यक था कि गोष्ठी के अनुरूप विषयों का चुनाव किया जाय। यह आशंका व्यक्त की जा रही थी कि तन्त्रशास्त्र तो रहस्य विद्या है, इस पर कार्यशाला में सार्वजनिक रूप से कैसे चर्चा चल सकती है ? इस आशंका के परिहार के लिये विद्वानों की एक समिति बनाई गई और उसके परामर्श के अनुसार निबन्धों के लिये दीक्षा, अभिषेक, मन्त्र, मातृका, मुद्रा, मण्डल, पीठ, न्यास, बाह्य और आन्तर पूजा, षडंग योग, कुण्डलिनी (चण्डाली) योग, वज्रदेह और प्राणापान-व्यापार (अजपा जप) —ये विषय निर्धारित किये गये। यद्यपि इन सभी विषयों का निरूपण तन्त्रों की सभी शाखाओं में नहीं हुआ है, तो भी जहाँ भी जिस विषय का जिस-किसी रूप में निरूपण हुआ हो, उसका स्पष्ट स्वरूप निखर कर हमारे सामने आ सके, यही इस कार्यशाला का उद्देश्य था। हम देखते हैं कि इस उद्देश्य की पूर्ति प्रस्तुत कार्यशाला ने पूरी तत्परता से की है।

इस विवरण के पाठकों के लिये एक आवश्यक सूचना यह है कि जिस समय इस कार्यशाला का आयोजन हो रहा था, लगभग उसी समय लखनऊ की संस्कृत अकादमी (संस्थान) ने संस्कृत साहित्य के बृहत् इतिहास को 18 खण्डों में प्रकाशित करने की योजना बनाई। उसमें एक खण्ड आगम-तन्त्रशास्त्र पर भी लिखा जाना था। उस खण्ड को तैयार करने-कराने का भार इन पंक्तियों के लेखक को सौंपा गया। उस समय यह निश्चय किया गया कि सारनाथ की गोष्ठी विषय-प्रधान हो और संस्कृत संस्थान का प्रकाशन इतिहास-प्रधान। इसका अभिप्राय यह नहीं रहा कि इतिहास खण्ड में प्रतिपाद्य विषयों का समावेश हो ही नहीं और इस कार्यशाला के निबन्ध इतिहास के घेरे में प्रवेश करें ही नहीं, किन्तु प्रधानता उनके लिये निर्धारित विषयों की ही रहे। यह खण्ड भी अब शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है। इस खण्ड के छप जाने के बाद ही हम विषय उपस्थापन में बताई गई पद्धति से इन सभी तान्त्रिक शाखाओं के क्रमिक विकास का लेखा-जोखा रख सकेंगे कि कहाँ-कहाँ किन-किन विषयों का विशद रूप से विवरण मिलता है और कहाँ-कहाँ वे बीज रूप में विद्यमान हैं। आगम और तन्त्रशास्त्र की विभाजन रेखा के रूप में कौल शास्त्र की विशेष भूमिका का अध्ययन कर सकते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम पूरे तन्त्रशास्त्र में कौल उपादानों की खोज करें।

एक अन्य सूचना यह भी है कि दो निबन्ध लेखकों के प्रथम और द्वितीय दिन उपस्थित न हो पाने से बौद्ध तन्त्र के अन्तर्गत योगतन्त्र सम्बन्धी निबन्ध का वाचन चौथे दिन (दि० 9.2.92) और जैन तन्त्र सम्बन्धी निबन्ध का वाचन पाँचवें दिन (दि० 10.2.92) हुआ। चौथे दिन वैष्णव तन्त्र सम्बन्धी चर्चा के बाद बौद्ध योगतन्त्र से संबद्ध निबन्ध का वाचन और इस पर

को उनकी संकलित सामग्री को दिखला भी लिया गया था। पूर्व विवरण में यह कार्य नहीं के बराबर हुआ था। लगता है, यह हमारा इस तरह का अन्तिम प्रयास होगा।

विचार विनिमय हुआ था। यह पूरी सामग्री कार्यशाला के विवरण में यथास्थान बौद्ध तन्त्रों के साथ जोड़ दी गई। इसी तरह से जैन तन्त्र से संबद्ध निबन्ध का वाचन और उस पर विचार-विनिमय भी शाक्त-स्मार्त तन्त्र संबन्धी चर्चा के पूरा हो जाने के बाद हुआ। अतः इन दोनों निबन्धों पर हुए विचार-विनिमय में चार या पाँच दिन तक हुई चर्चा का उल्लेख हो सकता है। पाठकगण से निवेदन है कि विवरण को पढ़ते समय वे इन तिथियों को ध्यान में रखें। जैसे कि बौद्ध तन्त्र संबन्धी निबन्ध के ऊपर हुए विचार-विनिमय में मण्डलों की चर्चा हुई है। यह चर्चा चौथे दिन हुई, दूसरे दिन नहीं। इस विषय की चर्चा विवरण में यथास्थान कर दी गई है। इसी तरह शैव तन्त्र से सम्बद्ध "पाशुपत, कालामुख और कापालिक सम्प्रदाय" शीर्षक निबन्ध का पाठ शाक्त-स्मार्त सम्बन्धी निबन्ध के साथ हुआ। शैव तन्त्रों पर हुए निबन्ध पाठ और उन पर हुई चर्चा में समय का अभाव होने से ऐसा करना पड़ा।

कार्यशाला में उपस्थित विद्वानों का स्वागत करते हुए इस संस्थान और इस योजना के निदेशक प्रो० एस० रिन्पोछे ने भोट (तिब्बत) देश में भारतीय तन्त्रविद्या के प्रवेश और उसके विकास का इतिहास बताते हुए कहा कि आज भी वहाँ तन्त्रशास्त्र का अध्ययन गुह्यविद्या के रूप में ही किया जाता है। आधुनिक शोधप्रधान अध्ययन की समालोचना करते हुए आपने यह बताया कि भोट देश के परम्परागत विद्वान् तन्त्रशास्त्र को किस दृष्टि से देखते हैं ? शास्त्रों में बताई गई पद्धति के अनुसार जब तक हम अपने जीवन को नहीं ढालते, तब तक उस अध्ययन का कोई लाभ नहीं है। इस तन्त्रविद्या को हम कैसे हृदयंगम कर सकते हैं, इसकी पद्धति पर भी आपने विस्तार से प्रकाश डाला। इस कार्यशाला में भोट विद्वान् उपस्थित न हो सके, इसकी पृष्ठभूमि को भी आपने स्पष्ट किया।

इस सप्तदिवसीय गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए भारतीय दर्शन और जैन विद्या के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० नथमल टाटिया ने विस्तार से बताया कि तन्त्रविद्या का प्रसार सभी देशों में है। तन्त्र शब्द के विस्तृत अर्थ की भी आपने चर्चा की। सन्त परम्परा की साधना में तन्त्रशास्त्र के अवदान का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि यह तो जीने की एक प्रणाली है। ग्रन्थों के सम्पादन मात्र से इसे हृदयंगम नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो हमें सन्तों का जीवन जीना होगा। इस कार्यशाला की सार्थकता इसी में है। आज अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म और मोक्ष को वरीयता दी जाय, यह आवश्यक है।

इस कार्यशाला के अध्यक्ष शैवागम के विश्वप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० एन० आर० भट्ट थे। यन्त्र की गड़बड़ी के कारण उनका अध्यक्षीय भाषण सुरक्षित न रह सका, किन्तु पूरे सात दिनों में समय-समय पर व्यक्त किये गये उनके विचारों को यहाँ[1] पर्याप्त सावधानी से संगृहीत किया गया

1. प्रो० एन० आर० भट्ट ने इस कार्यशाला में समय-समय पर जो विचार व्यक्त किये, उनको पृ. 55-56, 97, 396, 398-399, 402-403, 476, 552, 606-608, 644-645, 674-677 पर देखा जा सकता है।

7

भारतीय तन्त्रशास्त्र के अनुशीलन को सही दिशा देने के लिये यह आवश्यक था कि गोष्ठी के अनुरूप विषयों का चुनाव किया जाय। यह आशंका व्यक्त की जा रही थी कि तन्त्रशास्त्र तो रहस्य विद्या है, इस पर कार्यशाला में सार्वजनिक रूप से कैसे चर्चा चल सकती है ? इस आशंका के परिहार के लिये विद्वानों की एक समिति बनाई गई और उसके परामर्श के अनुसार निबन्धों के लिये दीक्षा, अभिषेक, मन्त्र, मातृका, मुद्रा, मण्डल, पीठ, न्यास, बाह्य और आन्तर पूजा, षडंग योग, कुण्डलिनी (चण्डाली) योग, वज्रदेह और प्राणापान-व्यापार (अजपा जप) —ये विषय निर्धारित किये गये। यद्यपि इन सभी विषयों का निरूपण तन्त्रों की सभी शाखाओं में नहीं हुआ है, तो भी जहाँ भी जिस विषय का जिस-किसी रूप में निरूपण हुआ हो, उसका स्पष्ट स्वरूप निखर कर हमारे सामने आ सके, यही इस कार्यशाला का उद्देश्य था। हम देखते हैं कि इस उद्देश्य की पूर्ति प्रस्तुत कार्यशाला ने पूरी तत्परता से की है।

इस विवरण के पाठकों के लिये एक आवश्यक सूचना यह है कि जिस समय इस कार्यशाला का आयोजन हो रहा था, लगभग उसी समय लखनऊ की संस्कृत अकादमी (संस्थान) ने संस्कृत साहित्य के बृहत् इतिहास को 18 खण्डों में प्रकाशित करने की योजना बनाई। उसमें एक खण्ड आगम-तन्त्रशास्त्र पर भी लिखा जाना था। उस खण्ड को तैयार करने-कराने का भार इन पंक्तियों के लेखक को सौंपा गया। उस समय यह निश्चय किया गया कि सारनाथ की गोष्ठी विषय-प्रधान हो और संस्कृत संस्थान का प्रकाशन इतिहास-प्रधान। इसका अभिप्राय यह नहीं रहा कि इतिहास खण्ड में प्रतिपाद्य विषयों का समावेश हो ही नहीं और इस कार्यशाला के निबन्ध इतिहास के घेरे में प्रवेश करें ही नहीं, किन्तु प्रधानता उनके लिये निर्धारित विषयों की ही रहे। यह खण्ड भी अब शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है। इस खण्ड के छप जाने के बाद ही हम विषय उपस्थापन में बताई गई पद्धति से इन सभी तान्त्रिक शाखाओं के क्रमिक विकास का लेखा-जोखा रख सकेंगे कि कहाँ-कहाँ किन-किन विषयों का विशद रूप से विवरण मिलता है और कहाँ-कहाँ वे बीज रूप में विद्यमान हैं। आगम और तन्त्रशास्त्र की विभाजन रेखा के रूप में कौल शास्त्र की विशेष भूमिका का अध्ययन कर सकते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम पूरे तन्त्रशास्त्र में कौल उपादानों की खोज करें।

एक अन्य सूचना यह भी है कि दो निबन्ध लेखकों के प्रथम और द्वितीय दिन उपस्थित न हो पाने से बौद्ध तन्त्र के अन्तर्गत योगतन्त्र सम्बन्धी निबन्ध का वाचन चौथे दिन (दि० 9.2.92) और जैन तन्त्र सम्बन्धी निबन्ध का वाचन पाँचवें दिन (दि० 10.2.92) हुआ। चौथे दिन वैष्णव तन्त्र सम्बन्धी चर्चा के बाद बौद्ध योगतन्त्र से संबद्ध निबन्ध का वाचन और इस पर

को उनकी संकलित सामग्री को दिखला भी लिया गया था। पूर्व विवरण में यह कार्य नहीं के बराबर हुआ था। लगता है, यह हमारा इस तरह का अन्तिम प्रयास होगा।

विचार विनिमय हुआ था। यह पूरी सामग्री कार्यशाला के विवरण में यथास्थान बौद्ध तन्त्रों के साथ जोड़ दी गई। इसी तरह से जैन तन्त्र से संबद्ध निबन्ध का वाचन और उस पर विचार-विनिमय भी शाक्त-स्मार्त तन्त्र संबन्धी चर्चा के पूरा हो जाने के बाद हुआ। अतः इन दोनों निबन्धों पर हुए विचार-विनिमय में चार या पाँच दिन तक हुई चर्चा का उल्लेख हो सकता है। पाठकगण से निवेदन है कि विवरण को पढ़ते समय वे इन तिथियों को ध्यान में रखें। जैसे कि बौद्ध तन्त्र संबन्धी निबन्ध के ऊपर हुए विचार-विनिमय में मण्डलों की चर्चा हुई है। यह चर्चा चौथे दिन हुई, दूसरे दिन नहीं। इस विषय की चर्चा विवरण में यथास्थान कर दी गई है। इसी तरह शैव तन्त्र से सम्बद्ध "पाशुपत, कालामुख और कापालिक सम्प्रदाय" शीर्षक निबन्ध का पाठ शाक्त-स्मार्त सम्बन्धी निबन्ध के साथ हुआ। शैव तन्त्रों पर हुए निबन्ध पाठ और उन पर हुई चर्चा में समय का अभाव होने से ऐसा करना पड़ा।

कार्यशाला में उपस्थित विद्वानों का स्वागत करते हुए इस संस्थान और इस योजना के निदेशक प्रो० एस० रिन्पोछे ने भोट (तिब्बत) देश में भारतीय तन्त्रविद्या के प्रवेश और उसके विकास का इतिहास बताते हुए कहा कि आज भी वहाँ तन्त्रशास्त्र का अध्ययन गुह्यविद्या के रूप में ही किया जाता है। आधुनिक शोधप्रधान अध्ययन की समालोचना करते हुए आपने यह बताया कि भोट देश के परम्परागत विद्वान् तन्त्रशास्त्र को किस दृष्टि से देखते हैं ? शास्त्रों में बताई गई पद्धति के अनुसार जब तक हम अपने जीवन को नहीं ढालते, तब तक उस अध्ययन का कोई लाभ नहीं है। इस तन्त्रविद्या को हम कैसे हृदयंगम कर सकते हैं, इसकी पद्धति पर भी आपने विस्तार से प्रकाश डाला। इस कार्यशाला में भोट विद्वान् उपस्थित न हो सके, इसकी पृष्ठभूमि को भी आपने स्पष्ट किया।

इस सप्तदिवसीय गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए भारतीय दर्शन और जैन विद्या के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० नथमल टाटिया ने विस्तार से बताया कि तन्त्रविद्या का प्रसार सभी देशों में है। तन्त्र शब्द के विस्तृत अर्थ की भी आपने चर्चा की। सन्त परम्परा की साधना में तन्त्रशास्त्र के अवदान का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि यह तो जीने की एक प्रणाली है। ग्रन्थों के सम्पादन मात्र से इसे हृदयंगम नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो हमें सन्तों का जीवन जीना होगा। इस कार्यशाला की सार्थकता इसी में है। आज अर्थ और काम की अपेक्षा धर्म और मोक्ष को वरीयता दी जाय, यह आवश्यक है।

इस कार्यशाला के अध्यक्ष शैवागम के विश्वप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० एन० आर० भट्ट थे। यन्त्र की गड़बड़ी के कारण उनका अध्यक्षीय भाषण सुरक्षित न रह सका, किन्तु पूरे सात दिनों में समय-समय पर व्यक्त किये गये उनके विचारों को यहाँ[1] पर्याप्त सावधानी से संगृहीत किया गया

1. प्रो० एन० आर० भट्ट ने इस कार्यशाला में समय-समय पर जो विचार व्यक्त किये, उनको पृ. 55-56, 97, 396, 398-399, 402-403, 476, 552, 606-608, 644-645, 674-677 पर देखा जा सकता है।

है। उनसे तन्त्रशास्त्र के इतिहास पर, उसके उद्भव और विकास की प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दक्षिण भारत के शैव मन्दिरों की पूजापद्धति पर आपने जो निबन्ध प्रस्तुत किया, उससे स्पष्ट होता है कि दक्षिण भारत की पूजापद्धति से उत्तर भारत की पूजापद्धति में अन्तर होते हुए भी इस कार्यशाला के लिये निर्धारित विषयों में से दीक्षा, अभिषेक, मन्त्र, मुद्रा, मण्डल, न्यास आदि की प्रक्रिया में पर्याप्त समानता है।

तन्त्रशास्त्र का [1]प्रायोगिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक पक्ष भी इस कार्यशाला में प्रस्तुत हो, यह हमें अभीष्ट था, किन्तु इसमें हम आंशिक रूप से ही सफल हो सके। कार्यशाला के छठे दिन इन विषयों पर विचार हुआ। विवरण को देखने से स्पष्ट होता है कि यहाँ तन्त्रशास्त्र के प्रायोगिक और दार्शनिक पक्ष पर सन्तोषजनक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका। दार्शनिक पक्ष पर रखे गये डॉ० वङ्छुग् दोर्जे के विचार अवश्य महत्त्व पूर्ण थे (पृ० 638-641)। इस कार्यशाला की एक विशेषता यह भी थी कि यहाँ सूफी मत पर भी विचार किया गया।

[2]मण्डल-निर्माण की प्रक्रिया पर वैष्णव पांचरात्र संबन्धी निबन्ध के प्रसंग में अवश्य सार्थक चर्चा हुई और एक स्वतन्त्र निबन्ध भी प्रस्तुत हुआ। इस अवसर पर आयोजित प्रदर्शनी में मण्डलों, चक्रों और मुद्राओं के चित्र भी प्रदर्शित किये गये थे। उनसे इतना अवश्य स्पष्ट हुआ कि मण्डलों के विषय में वैष्णव, शैव और बौद्ध तन्त्रों में पर्याप्त सामग्री मिल सकती है तथा जैन और शाक्त तन्त्रों में मण्डल के स्थान पर परवर्ती काल में चक्रों (यन्त्रों) का प्राधान्य हो गया था। वैदिक कर्मकाण्ड में आजकल इसमें से कुछ मण्डल और चक्र ही नहीं, न्यासपद्धति भी परिगृहीत है। इसी तरह से सभी तन्त्रों की अग्नि-कार्यविधि वैदिक पद्धति का अनुसरण करती है।

आजकल तन्त्रशास्त्र का अध्ययन हिन्दु तन्त्र और बौद्ध तन्त्र के रूप में अलग-अलग होता है। वैष्णव, शैव, शाक्त आदि तन्त्रों का हिन्दु तन्त्रों में समावेश कर लिया जाता है और जैन धर्म के अनुयायियों का मानना है कि जैन मत में तन्त्रशास्त्र को कोई मान्यता नहीं मिली। तन्त्रशास्त्र के अध्ययन में हिन्दु शब्द कितना भ्रामक है[3], इस विषय पर इस कार्यशाला में

1. इस कार्यशाला में इन पक्षों पर छठे दिन विचार हुआ। इनका विवरण पृ. 573-645 पर देखिये।
2. मण्डल के स्वरूप, निर्माण-विधि, निर्माण-सामग्री आदि विषयों पर प्रमुख चर्चा इस कार्यशाला के चौथे दिन वैष्णव तन्त्रों पर निबन्ध-वाचन के अवसर पर हुई। इस पर एक स्वतन्त्र निबन्ध भी प्रस्तुत हुआ। मण्डल-चर्चा के लिये निम्न पृष्ठ भी देखिये—पृ. 42-48, 81-83, 94, 150-151, 227-232, 348-349, 446-453, 461-484.
3. विवरण के पृ. 219, 471-472, 573 का अवलोकन कीजिये।

विचार हुआ और यह भी स्थापित हुआ कि जैन धर्म में भी[1] तन्त्रशास्त्र का विपुल साहित्य उपलब्ध है।

भारतीय आगमशास्त्र को तन्त्रशास्त्र से अलग कर दिया गया है और प्रायः यह मान लिया गया है कि पंचमकार जैसे उपादान तन्त्रशास्त्र के आवश्यक अनिवार्य अंग हैं। आप यहाँ देखेंगे कि इसी आधार पर महायान-संमत संभोगकाय और महापुरुष लक्षण में भी अश्लीलता और तन्त्र के प्रभाव को खोजने की प्रवृत्ति कार्य कर रही थी। जैन विद्वान् इस परिभाषा से आतंकित से लगते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि केवल मत्स्येन्द्रनाथ के द्वारा प्रवर्तित कौल मत का अनुवर्तन करने वाले तन्त्रों में ही ये उपादान मिलते हैं। जैन विद्वानों के लिये यह सूचना देना भी आवश्यक है कि जैन योगशास्त्र में जिन पिण्ड, पद, रूप और रूपातीत ध्यानों की चर्चा है, वे मूलतः कौल शास्त्र के शब्द हैं, भले ही इनके अर्थों में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो गया हो। बौद्ध तन्त्रों में सेकयोग और हठयोग की चर्चा आई है। इनमें सेकयोग मत्स्येन्द्रनाथ की पूजा-पद्धति का अनुसरण करता है और हठयोग का अनुवर्तन आगे चलकर गोरक्ष आदि नाथयोगियों ने किया है। यह निःसन्दिग्ध रूप से मान लिया जाना चाहिये कि मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ के काल में शताब्दियों का व्यवधान है। इतिहास की रचना स्थूल प्रमाणों के आधार पर होती है और नये प्रमाणों के मिलने के साथ ही पूर्व स्थापनाएँ पुरानी पड़ जाती हैं।

तन्त्रशास्त्र के सामाजिक अवदान के लिये कायपूजा, एक ही जन्म में मुक्ति, रागादि क्लेशों का मार्गीकरण, प्रातिभ ज्ञान, अर्थात् स्वानुभव की वरीयता, प्रभास्वर चित्त, समता, पाशाष्टक जैसे विषयों पर इस कार्यशाला में सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विचार हुआ। संस्कृति शब्द को केन्द्रित कर भ्रम की स्थिति अवश्य पैदा हुई, किन्तु शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता के "संस्कृतिर्विश्ववतारा (7.14), "यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्" (32.8) जैसे वचनों को देखते हुए इसकी निराधारता स्पष्ट हो जाती है। मीमांसा शास्त्र में गुणकर्म के भेदों में विकृति के साथ संस्कृति शब्द भी प्रयुक्त है।

भारतीय संस्कृति के प्रेमियों की आज यह स्थिति हो गई है कि जहाँ सर्वनाश हो रहा है, उस तरफ से तो आँखें मूँद रखी हैं और संस्कृति शब्द में वे पाश्चात्य प्रभाव खोज रहे हैं। वस्तुतः विशाल दृष्टिकोण वाला भयमुक्त भारतीय समाज ही भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृति के पद पर प्रतिष्ठित कर सकता है और उसमें सर्वाधिक योगदान भारतीय तन्त्रशास्त्र और औपनिषद तत्त्वदर्शन का होगा। इसके लिये हमें तन्त्रशास्त्र केवल कर्मकाण्ड का पिटारा है, इस मिथ्या अवधारणा को दूर करना होगा। हम समझते हैं कि कार्यशाला का यह विवरण और आगम-तन्त्रशास्त्र के इतिहास का उक्त खण्ड इस भ्रम को दूर करने में समर्थ होंगे।

---

1. जैन तन्त्र सम्बन्धी निबन्धों के वाचन के बाद विचार-विनिमय में भाग ले रहे प्रो० गोकुलचन्द्र जैन के विचार पढ़िये, पृ. 290.

भारतीय तन्त्रशास्त्र की प्रवृत्ति बहुत बाद में हुई, इस बात को सिद्ध करने के लिये प्राच्य-पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत परिश्रम किया है और उसकी झलक यहाँ भी[1] देखने को मिली, किन्तु हम भारतीय वाङ्मय की आगम शाखा को तन्त्रशास्त्र से किसी भी रूप में पृथक् नहीं कर सकते। पांचरात्र, पाशुपत और सिद्धान्त शैवागम का भी समावेश तान्त्रिक वाङ्मय में ही किया गया है। हम देखते हैं कि तन्त्रशास्त्र के जिन विषयों की ऊपर चर्चा की गई है, उनमें से प्राय: सभी विषयों का वर्णन इन सबमें उपलब्ध है। इस प्रसंग में मनुस्मृति के टोकाकार कुल्लूक भट्ट और श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों की चर्चा यहाँ हुई है[2]। इसी आधार पर भारतीय शास्त्रों के दो मोटे विभाग मिलते हैं—त्रैवर्णिकविषय और सर्ववर्णविषय। निगम, अर्थात् वैदिक विभाग (वैदिको श्रुति) को हम त्रैवर्णिकविषय तथा आगम और तन्त्रशास्त्र (तान्त्रिक श्रुति) को सर्ववर्णविषय कह सकते हैं। सिद्धान्त शैवागम के नाम से प्रसिद्ध 28 शैवागमों की प्रवृत्ति के काल के विषय में अभी तक हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते, किन्तु पांचरात्र और पाशुपत मत की प्रवृत्ति ईसापूर्व की शताब्दियों में हो चुकी थी। इसके निश्चित प्रमाण विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत किये जा चुके हैं। प्राचीनतम उपनिषदों और महावीर पूर्ववर्ती जैन उपादानों के समकक्ष इनको रखना होगा।

कुछ विद्वान् लकुलीश पाशुपत के पहले पाशुपत मत की सत्ता को मानने के लिये तैयार नहीं है, किन्तु लकुलीश पाशुपत यह नाम ही इससे भिन्न पाशुपत मत की सत्ता को सिद्ध करता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने "द्विप्रवाहमिदं शास्त्रम्" कह कर श्रीकण्ठ और लकुलीश की परम्परा के दो शास्त्रों का स्पष्ट उल्लेख किया है। शैवागमों के सोमसिद्धान्त का, कालामुख और कापालिक शाखाओं का, लकुलीश की परम्परा के लाकुल, मौसुल, वैमल और कारुक मतों की प्रवृत्ति का कालनिर्णय करना अभी बाकी है। कौल शाखा का सही कालनिर्णय भो तभी संभव हो सकेगा। इन मतों के विकास में बुद्ध और महावीर काल में प्रचलित मतवादों, विशेषकर आजीवकों और लोकायतों के सिद्धान्तों की भूमिका की भी परीक्षा करनी होगी।

आजकल आगमशास्त्र और तन्त्रशास्त्र का अलग-अलग अध्ययन किया जाता है। तन्त्रशास्त्र पर लिखने वाले विद्वानों का यह आग्रह रहता है कि तन्त्रशास्त्र में उन्हीं शाखाओं का समावेश किया जा सकता है, जिनमें स्पष्ट रूप से पंचमकार की प्रक्रिया का प्रतिपादन किया गया हो। तन्त्रशास्त्र की इस परिभाषा को स्वीकार करते हुए भी वे अपने ग्रन्थों में उस साहित्य

---

1. इसके लिये विवरण के पृ. 231-236, 320-325, 369-376, 578-593 देखिये।
2. निगम और आगम की भिन्नता-अभिन्नता पर पक्ष-विपक्ष में यहाँ अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। "निगम, आगम और उनकी शाखाएँ" शीर्षक निबन्ध भी इसी विषय से संबद्ध है। देखिये—पृ. 554-572

का परिचय देने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते, जिनमें कि इस प्रकार के उपादान हैं ही नहीं। इस कार्यशाला में तथा अन्यत्र भी तन्त्र शब्द की अर्वाचीनता को आधार बनाकर इस शास्त्र को अर्वाचीन सिद्ध करने तथा निगम और आगम की भिन्नता पर प्रश्नचिह्न लगाने का भी प्रयत्न हुआ, किन्तु वैदिक एवं तान्त्रिक श्रुति की भिन्नता पर और आगम तथा तन्त्रशास्त्र की अभिन्नता पर भारतीय वैदिक वाङ्मय में ही पर्याप्त वचन मिलते हैं। पहले क्या था ? इस पर विचार करने की अपेक्षा आज क्या है ? इसे हमें देखना होगा। शास्त्रों में जो अपने मत के अनुकूल है, उसे मान्यता दी जाय और बाकी को प्रक्षिप्त कहा जाय, यह सोच किसी भी प्रकार से उचित नहीं माना जा सकता।

प्रस्तुत गोष्ठी के लिये जिन विषयों को निर्धारित किया गया था, उनमें दीक्षा[1] और अभिषेक का प्रथम स्थान है। यह इसलिये भी कि सारी तान्त्रिक प्रक्रिया का आधार दीक्षा और अभिषेक ही हैं। 'धीः' पत्रिका के प्रथम अंक (पृ० 106-112) में "दीक्षाविषयक सौगत पक्ष पर क्षेमराज का दृष्टिकोण" शीर्षक निबन्ध छपा है। उसमें दीक्षाविषयक धर्मकीर्ति के मत की कश्मीरी शैवाचार्य क्षेमराज के द्वारा की गई समालोचना और उसका समाधान प्रस्तुत हुआ है। ऐसा लगता है कि धर्मकीर्ति की दीक्षाविषयक इस समालोचना का बौद्ध तन्त्रों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा और बौद्ध तन्त्रों में 'दीक्षा' पद के स्थान पर 'अभिषेक' शब्द अधिक प्रिय हो गया। इतर तन्त्रों में दीक्षा और अभिषेक दो भिन्न क्रियाओं के बोधक शब्द हैं, जब कि बौद्ध ग्रन्थों में अभिषेक के अंग के रूप में वर्णित नाम, व्याकरण आदि अभिषेक अन्यत्र दीक्षा के ही अंग हैं। इस विषय पर तुलनात्मक दृष्टि में गवेषणा के लिये अभी पर्याप्त अवसर है।

दीक्षा या अभिषेक के लिये मण्डल[2] का निर्माण अपेक्षित है, किन्तु कौल तन्त्र के ग्रन्थ परात्रीशिका का कहना है कि कौल उपासक बिना मण्डल में प्रवेश किये ही सिद्धि प्राप्त

---

1. बौद्ध तन्त्र संबन्धी निबन्धों में हम देखते हैं कि वहां सर्वत्र दीक्षा के स्थान पर अभिषेक शब्द प्रयुक्त हुआ है। अन्यत्र दोनों शब्द स्वतन्त्र अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हैं। बौद्ध तन्त्रों में अभिषेक के अनेक प्रकार वर्णित है और अन्यत्र दीक्षा के। धर्मकीर्ति ने दीक्षा शब्द के साथ तुला-दीक्षा की समालोचना की है। जैन तन्त्रों में दीक्षा को वाचना कहा गया है। दीक्षा के प्रसंग में गुरु-शिष्य लक्षण, दीक्षास्थान, दीक्षाविधि, अधिवासदीक्षा, स्वप्न आदि विषयों पर भी विचार किया जाता है। दीक्षा और अभिषेक शब्द समानार्थक हैं या नहीं, इस प्रश्न पर भी यहाँ विचार हुआ है। यह इस कार्यशाला का प्रधान विषय रहा है और प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पूरे विवरण में इस विषय की विविध रूपों में चर्चा आपको मिलेगी। यहाँ स्वप्न में उपलब्ध हुई दीक्षा, स्वतः दीक्षा और महिला गुरु के द्वारा उपलब्ध हुई दीक्षा जैसे विषयों पर भी विचार हुआ है।
2. मण्डल विषयक पृ. 50 की दूसरी टिप्पणी देखिये।

कर सकता है। यही दृष्टि अनुत्तरतन्त्र के ग्रन्थों में भी लक्षित होती है। अनुत्तरतन्त्र मातृतन्त्र, पितृतन्त्र और अद्वयतन्त्र के रूप में विभक्त है, उसी तरह कौल तन्त्रों के भी योगिनीकौल, सिद्धकौल आदि भेद मिलते हैं। अद्वयतन्त्रों का प्रतिनिधित्व कश्मीर का प्रत्यभिज्ञा दर्शन करता है, ऐसा हम मान सकते हैं। "येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा। सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात्" ॥ बौद्ध तन्त्रों में अनेक स्थानों पर निर्दिष्ट यह सिद्धान्त कौल तन्त्रों से अनुप्राणित शैव, शाक्त आदि सभी तन्त्रों की शाखाओं को मान्य है। पृ० 610-611 पर उद्‌धृत मालिनीविजय तन्त्र का एक लम्बा उद्धरण इसकी पुष्टि करता है। स्पष्ट है कि यहाँ शास्त्रीय नियमों की अपेक्षा सहज स्थिति को वरीयता दी गई है।

वज्रयान, कालचक्रयान और सहजयान नामक त्रिविध विभागों में बौद्ध तन्त्रों को बाँटा गया है, किन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि कौल तन्त्रों और उनसे प्रभावित कश्मीर के शैव तन्त्रों में भी ये त्रिविध उपादान उपलब्ध होते हैं। अभिनवगुप्त ने अपने विशाल ग्रन्थ तन्त्रालोक के विभिन्न आह्निकों में कालोदय, चक्रोदय, वाम तन्त्र, कौल तन्त्र आदि की विविध पद्धतियों का जो वर्णन किया है, उनमें बौद्ध तन्त्रों के उक्त विभागों के सभी विषय पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। समस्त तन्त्रों की आन्तर वरिवस्या (आध्यात्मिक उपासना) सहज स्थिति को ही उजागर करती है। यहाँ आकर दो स्थितियाँ बन जाती हैं। एक तो यह कि बाह्य पूजा की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी यह कि बाह्य कर्मकाण्ड आप करें या न करें, यह आपकी इच्छा के ऊपर निर्भर है, किन्तु सहज रूप से जो कुछ आपसे बन सकता है, उसके साथ आप इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि इससे आपका चित्त निर्मल हो रहा है या नहीं, आपका चित्त मलिनता को त्याग कर प्रभास्वरता की ओर बढ़ रहा है या नहीं। पूजा, जप, होम आदि बाह्य उपादानों से सहज रूप से सम्पन्न हो सकते हैं और इनकी आध्यात्मिक व्याख्या भी की गई है कि मानसिक रूप से आप इनकी भावना कर सकते हैं।

तन्त्रों में कुण्डलिनी[1] अथवा चण्डाली योग की प्रक्रिया भी वर्णित है। चक्रों और आधारों की संख्या में तथा नामों में भिन्नता होने पर भी इसकी प्रक्रिया सर्वत्र एक सी है। वसन्ततिलक (10 30-37) में वर्णित पद्धति की आप नित्याषोडशिकार्णव (4.12-16) में वर्णित प्रक्रिया से तुलना

1. शैव, शाक्त आदि तन्त्रों में वर्णित कुण्डलिनी योग ही बौद्ध तन्त्रों में चण्डाली योग के नाम से प्रसिद्ध है। अन्यत्र इडा, पिंगला और सुषुम्ना के नाम से प्रसिद्ध तीन प्रधान नाड़ियाँ बौद्ध तन्त्रों में ललना, रसना और अवधूती के नाम से वर्णित हैं। चतुर्विध अथवा षड्‌विध चक्र, प्राण आदि दशविध वायु, नाड़ियों की संख्या और स्वास-प्रस्वास की संख्या आदि में भी सर्वत्र समानता है। बौद्ध तन्त्रों में वज्रदेह, वज्रजाप (पृ. 129) आदि के प्रसंग में इनकी चर्चा हुई है। जैन और वैखानस आगमों में वर्णित कुण्डलिनी का स्वरूप तद्विषयक निबन्धों में देखा जा सकता है।

कर सकते हैं। प्रक्रिया के प्रतिपादन में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों की भिन्नता के रहते हुए भी, प्रस्तुत प्रक्रिया के द्वारा प्राप्तव्य परम लक्ष्य के नामों की भिन्नता दिखाई देने पर भी प्रक्रिया में हमें कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। इससे संबद्ध नाड़ियों और वायुओं की संख्या नाम आदि के विषय में भी इनमें परस्पर समानता देखी जा सकती है।

पूजा की बाह्य और आन्तर (मानस) पद्धतियों का विवरण तन्त्र की सभी शाखाओं में समान रूप से मिलता है। स्मार्त पंचायतन पूजा और पंचस्तूप पूजा का समावेश बाह्य विभाग में किया जायगा, जिसकी प्रवृत्ति छठी शताब्दी के विष्णुधर्मोत्तरपुराण से पहले अवश्य हो गई थी। मनुस्मृति में भी इसकी खोज आवश्यक है। कुण्डलिनी योग अथवा चण्डाली योग पूजा का तीसरा प्रकार है। कौल तन्त्रों और बौद्ध तन्त्रों में पूजा का एक चौथा प्रकार भी वर्णित है। यह है कायपूजा का। इनका मानना है कि जब हम मूर्ति, मण्डल, पट, चक्र आदि में देवता की आराधना कर सकते हैं, तो इस चेतन मानवदेह में आत्मदेवता की उपासना क्यों नहीं कर सकते ? कापालिकों की यह पूजा शरीर के नवद्वार से निर्गत होने वाले उपादानों से होती है, जब कि कौल और बौद्ध मत में यह द्वादश रत्न, पंचरत्न, पंच प्रदीप, पंच मकार आदि उपादानों से सम्पन्न होती है। सारा ब्रह्माण्ड इस मानव शरीर में विद्यमान है, एक ही जन्म में मुक्ति मिल सकती है, साधक को उन्मत्त के समान आचरण करना चाहिये। इस तरह के सिद्धान्त लकुलीश पाशुपत मत, वीरशैव मत, नाथ सम्प्रदाय और अवधूतसिद्ध जैसे शैव आचार्यों को भी मान्य हैं। एक ही जन्म में मुक्ति का सिद्धान्त चीन और जापान के कुछ सम्प्रदायों में भी प्रचलित है। गुह्यसिद्धि जैसे ग्रन्थों में भी इस सबका वर्णन मिलता है। तन्त्रशास्त्र के प्रायोगिक पक्ष पर विचार करते समय इन विषयों पर भी चर्चा हुई। सिद्धावस्था में गुणों की अभिव्यक्ति होती है, यह जैन मत की मान्यता है। सिद्धान्त शैवमत में भी यह माना गया है कि मुक्ति-दशा में जीव में शिवसदृश गुणों की अभिव्यक्ति होती है।

आनापानस्मृति, प्राणापानप्रक्रिया, प्राण के स्पन्दन के साथ सम्पन्न होने वाली श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर भी प्रायः सभी तन्त्रों की विचार सरणि एक सी है। दिन-रात में सम्पन्न होने वाली श्वास-प्रश्वास की संख्या सर्वत्र 21600 मानी गई है। योगशास्त्र के ग्रन्थों में और अजपाजप (हंसगायत्री) की प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाले ग्रन्थों में भी यही संख्या मान्य है। अपने इष्टदेव को इसके विनिवेदन के प्रकार अवश्य भिन्न-भिन्न हैं। "प्राणापानौ समौ कृत्वा" (पृ. 5.27) भगवद्गीता की यह प्रक्रिया प्राचीन उपनिषदों की प्राणोपासना से, पालि वाङ्मय और बौद्ध षडंगयोग में वर्णित अनुस्मृति की प्रक्रिया से मिलती जुलती लगती है। प्राणापान की बाह्य द्वादशान्त की गति को रोक कर आन्तर ऊर्ध्व द्वादशान्त की ओर मोड़ना भी प्राणापान-प्रक्रिया का ही अंग है।

षडंग योग का प्रतिपादन बौद्ध तन्त्रों की विशेषता माना गया है। सिद्धियों को भी बौद्ध और बौद्धेतर विभागों में बाँट दिया जाता है। तन्त्रों को नास्तिक-आस्तिक जैसे विभागों में बाँट कर नास्तिक तन्त्रों पर विदेशी प्रभाव की भी चर्चा की जाती है। इन सब स्थापनाओं की असंगति पर स्वतन्त्र रूप से हम पर्याप्त विचार कर चुके हैं[1]। षडंग योग का प्रतिपादन शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सभी तन्त्रों में और उपनिषद्, पुराण आदि में भी हुआ है। पातंजल योग के यम और नियम का दीक्षा के अवसर पर गुरु के द्वारा शिष्य को दिये जाने वाले समयों (नियमों) में अन्तर्भाव हो जाता है और आसन तान्त्रिक पूजा का प्रथम उपादान है। बाकी बचे पाँच योगांगों में बौद्ध तन्त्रों में अनुस्मृति, शैव तन्त्रों में ऊह, वैष्णव और पाशुपत मत में जप और कश्मीर के त्रिक दर्शन में तर्क का समावेश कर योग के छः अंगों का इन सबमें निरूपण किया जाता है। इनके लक्षण, स्वरूप आदि में भिन्नता अवश्य लक्षित होती है, किन्तु इनका मूल ढाँचा सर्वत्र समान है।

मातृका[2] (50 या 51 अक्षरों की वर्णमाला) का मूल ढांचा भी सभी तन्त्रों में समान रूप से मान्य है, किन्तु स्वर-व्यंजन, बीज-योनि, आलि-कालि, मालिनी, शब्दराशि, भूतलिपि आदि

---

1. षडंग योग के विषय में नित्याषोडशिकार्णव का उपोद्घात (पृ. 117-119), सिद्धियों के विषय में शक्तिसंगमतन्त्र का उपोद्घात (पृ. 86-87), तन्त्रों के आस्तिक-नास्तिक विभाग और उन पर विदेशी प्रभाव के विषय में आगम और तन्त्रशास्त्र (पृ. 6-9) देखिये। वज्रयोग और सुविशुद्धक्रमयोग के साथ बौद्ध षडंग योग का विवरण यहाँ (पृ. 155-162) देखिये। जैन षडंग योग और वैखानस षडंग योग का भी परिचय यथास्थान प्राप्त कीजिये। तन्त्रशास्त्र के, विशेष कर शैवागम के ग्रन्थों में शास्त्रों के लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक, आतिमार्गिक और मान्त्रिक नामक पाँच विभाग उपलब्ध हैं। तन्त्रों के आस्तिक-नास्तिक नामक काल्पनिक विभागों की अपेक्षा इस शास्त्रीय विभाग को हमें वरीयता देनी चाहिये। शास्त्रों के चतुर्दश विद्यास्थान और बौद्धों के पंचविध विद्यास्थान की चर्चा वसन्ततिलक की टीका में स्वयूथ्य और परयूथ्य के नाम से हुई है। सिद्धान्तप्रकाशिका की प्रस्तावना में हमने इन सबकी तुलनात्मक समीक्षा की है। प्रस्तुत कार्यशाला के विषय-उपस्थापन (पृ. 18) में भी इसकी संक्षिप्त चर्चा हुई है।

2. मातृका, मालिनी और भूतलिपि का तथा मन्त्र और मुद्रा का विशेष विवरण हमारे नित्याषोडशिकार्णव के उपोद्घात (पृ. 62-78) में देखा जा सकता है। बौद्ध तन्त्रों में स्वरव्यंजनात्मक मातृका का विभाजन आलि और कालि के रूप में किया जाता है। मन्त्रों के हृदय, उपहृदय आदि विभाग बौद्ध तन्त्रों की और पंच नमोकार मन्त्र जैन तन्त्रों की विशेषता मानी जा सकती है, किन्तु इस प्रसंग में पंचब्रह्म, पंचोपनिषद्, पंचबुद्ध आदि के मन्त्रों की संख्या पर विचार करना पड़ेगा। पुरुषदेवता के मनु मन्त्र तथा स्त्रीदेवता के विद्या कहलाते हैं। इस तरह के मन्त्रों के विविध रूपों पर यहाँ

नामों से इनकी व्याख्या विभिन्न तन्त्रों में विभिन्न रूपों में की गई है। वर्णमाला के अक्षर ही विभिन्न मन्त्रों के उपादान कारक हैं। मन्त्र पद की "मननात् त्रायते" यह व्युत्पत्ति सभी तन्त्रों को मान्य है। मण्डल, मुद्रा, न्यास, पीठ आदि पदों की व्युत्पत्तियों में भी हमें कोई विशेष अन्तर नहीं मिलता। इन सबके भेद-उपभेद में हमें अवश्य भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।[1] पीठ, उपपीठ आदि भेदों का और उनके आन्तर और बाह्य स्थानों की विवेचना का क्रम कौल तन्त्रों और बौद्ध तन्त्रों में बहुत कुछ मिलता जुलता है। हम कह सकते हैं कि प्रथमतः पीठों की विवेचना बौद्ध तन्त्रों में अधिक विस्तार से मिलती है। बाद में अन्य तन्त्रों में पीठ की संख्या 51, 64 और 108 तक हो गई। तन्त्रशास्त्र के अतिरिक्त पुराणों में भी इनकी विवेचना मिलती है।

वज्रदेह की व्याख्या बौद्ध तन्त्रों का अपना मौलिक विषय लगता है। 37 बोधिपाक्षिक धर्म, आदर्श आदि पंचविध ज्ञान, चतुर्विध क्षण, आनन्द, योग, मुद्रा आदि की विवेचना भी बौद्धों की अनितर साधारण विशेषता है। इष्टदेव के स्वरूप का दार्शनिक विवेचन सभी तन्त्रों ने अपनी-अपनी पद्धति से किया है। इतना सब होते हुए भी हम यह अवश्य कह सकते हैं[2] कि तान्त्रिक धर्म और दर्शन ने सभी धर्मों और सम्प्रदायों में एकनीडता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इनमें विरोध मिटते गये हैं और आपस की समानता अधिक स्पष्ट होती गई है। दार्शनिक क्षेत्र में भी यह प्रक्रिया सक्रिय रही है, किन्तु भारतीय दर्शनों का, विशेषकर तान्त्रिक दर्शन का अभी इस दृष्टि से अनुशीलन हो नहीं पाया है।

विचार हुआ है। इसी तरह से मुद्राओं के विविध रूपों को भी यहाँ देखा जा सकता है। न्यास के विषय में यहाँ अधिक विचार नहीं हुआ, किन्तु वीरशैव मत में ब्रह्मचारी, गृहस्थ और संन्यासी के लिये अलग-अलग न्यासों का विधान बताया गया है।

1. पीठ-उपपीठ आदि की भी संक्षिप्त चर्चा उक्त उपोद्घात (पृ. 78-83) में देखी जा सकती है। बौद्ध तन्त्रों में वर्णित पीठ-उपपीठ आदि का विशेष विवेचन 'धीः' के 1, 3, 10-11, 21 अंकों में प्रकाशित "बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन" शीर्षक निबन्धों से प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य पीठों के साथ आन्तर पीठों की भी चर्चा कौल तन्त्रों और बौद्ध तन्त्रों में मिलती है। चतुर्विध बाह्य पीठों की चर्चा यहाँ (पृ. 593.598) देखी जा सकती है।

2. यहीं पितृतन्त्र सम्बन्धी निबन्ध में और उस पर हुए विचार-विनिमय में युगनद्धकाय की प्राप्ति के आधारभूत वज्रदेह की और उसमें स्थित नाड़ी, चक्र, वायु, तिलक आदि की चर्चा देखी जा सकती है। "मातृतन्त्र वर्णित वज्रदेह" शीर्षक निबन्ध में भी वज्रदेह से संबद्ध नाडी, चक्र, वायु, बिन्दु आदि विषयों का अधिक विस्तार से वर्णन है। यहाँ मनुष्य-देह की उत्पत्ति के विषय में भी संक्षिप्त चर्चा है। हम कह सकते हैं कि तिलक और बिन्दु को छोड़कर ये सब विषय प्रकारान्तर से कुण्डलिनी योग के प्रसंग में तन्त्रशास्त्र की अन्य शाखाओं में भी उपलब्ध हैं। नाड़ी, चक्र, आधार और वायु का वर्णन यहाँ जैन तन्त्र और वैखानस मत विषयक निबन्धों में भी देखा जा सकता है।

प्रस्तुत कार्यशाला के लिये निर्धारित विषयों की यह समीक्षा इस अवसर पर उपस्थित किये गये सामूहिक तथ्यों के ऊपर आधारित है। यहाँ एक प्रश्न उठाया गया है कि इन समान विचारों की उद्भावना सबसे पहले कहाँ हुई ? इस तरह के प्रश्नों को उठाते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी है कि बौद्ध और जैन दृष्टियों का विकास बाहर से आकर किसी ने नहीं किया और वैदिक एवं आगमिक-पौराणिक दृष्टि का विकास करने वाले भी भारत भूमि के ही सपूत हैं। हमारे लिये अच्छा यही होगा कि हम सर्वत्र तत्कालीन परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करें और ऐतिहासिक दृष्टि से हमारे सामने जो तथ्य उपस्थित हों, उन्हें बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार करें।

अब हम क्रमशः कार्यशाला में विद्वानों के समक्ष उपस्थित प्रश्नों पर हुए विचार-विनिमय को आधार बनाकर कुछ मुख्य विषयों की समीक्षा करना चाहते हैं।

शैव और वैष्णव आगम विद्या, क्रिया, योग और चर्या नाम के चार पादों में विभक्त हैं। प्रत्येक पाद में किन-किन विषयों का प्रतिपादन हुआ है, इसका भी वहाँ स्पष्ट परिगणन किया गया है। इसी तरह बौद्ध तन्त्र भी क्रिया,[1] चर्या, योग और अनुत्तर विभागों में विभक्त हैं। इनकी भी स्पष्ट भेदक-रेखा विषयों के प्रतिपादन के आधार पर होनी चाहिये। इन चतुर्विध तन्त्रों की चर्चा हमने "सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान" के नाम से प्रकाशित ग्रन्थ के अपने "विहगावलोकन" ('धीः', अंक 11, पृ. 159) में की है। 'धीः' के अन्य विभिन्न अंकों, प्रस्तुत समालोच्य ग्रन्थ "भारतीय तन्त्रशास्त्र" में प्रकाशित पाँच निबन्धों एवं उन पर हुए विचार-विनिमय में भी इन चतुर्विध तन्त्रों पर पर्याप्त विचार हुआ है, किन्तु हमें ऐसा लगता है कि इन चतुर्विध तन्त्रों की कोई सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत नहीं हो पाई है। पांचरात्र वैष्णव आगम में पांचरात्र पद की नाना प्रकार की व्युत्पत्तियाँ देखने को मिलती हैं, किन्तु इन सबसे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि वस्तुतः पांचरात्र पद की प्रथम प्रवृत्ति किस अर्थ में हुई थी। उसी तरह से यहां भी लग रहा है। एक स्थान पर तो हास, दर्शन, पाण्याप्ति जैसी क्रियाओं को भी चतुर्विध तन्त्रों से जोड़ दिया गया है, जो कि मूलतः केवल अनुत्तर तन्त्र से संबद्ध हो सकती हैं। पांचरात्र शब्द की

---

1. क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तर नामक चार विभागों और अनुत्तर विभाग के मातृ, पितृ और अद्वय नामक उपविभागों के साथ योग, अतियोग आदि विभागों की भी चर्चा यहाँ बौद्ध तन्त्र संबन्धी पाँचों निबन्धों में उन पर हुए विचार-विनिमय में विस्तार से हुई है। तन्त्र शब्द की और ऊपर निर्दिष्ट अवान्तर भेदों की परिभाषाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। ऐसा लगता है कि इस पूरे प्रकरण पर पुनर्विचार अपेक्षित है। जैन तन्त्र में शक्तितत्त्व, प्रतिनिधि द्रव्यों की व्यवस्था जैसे विषयों की भी समीक्षा अपेक्षित है। यहाँ भी दृष्टि की परिवर्तनशीलता के सिद्धान्त को हम आँख-ओझल नहीं कर सकते।

नाना प्रकार की व्युत्पत्तियाँ इसलिये प्रचलित हुई कि परवर्ती काल में मूल शास्त्र के अध्ययन में एक लम्बा व्यवधान पड़ गया। इसी तरह से यहाँ भी लगता है कि भोट देश में परवर्ती काल में क्रिया, चर्या आदि शब्दों का मूल अर्थ विस्मृत हो गया। इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है, जब कि उन-उन विभागों में संगृहीत तन्त्रों का गंभीर अध्ययन कर इनकी सीमा का निर्धारण किया जाय। प्रो० एन० आर० भट्ट ने आगमों के चतुर्विध पादविभाग की ज्ञान, क्रिया, योग और भक्ति (चर्या) मार्ग से तुलना की है। चतुर्विध बौद्ध तन्त्रों पर क्या यह परिभाषा लागू हो सकती है ?

दूसरी बड़ी समस्या बौद्ध तन्त्रों की प्रवृत्ति के काल की है। योगाचार (विज्ञानवादी) सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य असंग के द्वारा अपने महायानसूत्रालंकार आदि ग्रन्थों (पृ० 44) में प्रयुक्त [1]आश्रय-परावृत्ति जैसे शब्दों के आधार पर गुह्यसमाजतन्त्र की प्रवृत्ति चौथी शताब्दी के आसपास तथा आर्यमंजुश्रीमूलकल्प की प्रवृत्ति इससे भी पहले मानी गई है। इस विषय में यहाँ पर्याप्त चर्चा हुई। स्पष्ट है कि मैथुन-परावृत्ति जैसे शब्दों की गलत व्याख्या पर यह तिथि आधारित है। परावृत्ति शब्द यहाँ योगशास्त्र में प्रयुक्त प्रत्याहार शब्द के अर्थ को व्यक्त करता है, विपरीत रति जैसे अर्थ को नहीं। इसी तरह आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में भूततन्त्र और गारुडतन्त्र का उल्लेख है। शिव के पाँच मुखों से क्रमशः गारुड, दक्षिण (भैरव), भूत, वाम और सिद्धान्त (शैव) तन्त्र निर्गत हुए हैं। इन तन्त्रों को उद्धृत करने वाले ग्रन्थ का काल कैसे इतना प्राचीन हो सकता है ? क्योंकि इन पंचविध तन्त्रों का काल इतना प्राचीन मानने को आज के इतिहासज्ञ तैयार नहीं हैं।

यह भी ध्यान देने की बात है कि इधर जापानी विद्वानों ने गुह्यसमाजतन्त्र का काल छठी शताब्दी के आसपास निर्धारित किया है। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प के कुछ वर्णनों के आधार पर उसका काल तो आठवीं शताब्दी तक आ जाता है। अनेक प्रमाणों से अब यह सिद्ध हो चुका है कि कौल तन्त्रों के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ हैं और डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय के अनुसार इनका आविर्भाव काल पाँचवीं-छठी शताब्दी है। गुह्यसमाजतन्त्र में कौल उपादानों की उपस्थिति यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि इसका आविर्भाव मत्स्येन्द्रनाथ के बाद ही हुआ होगा। बौद्ध परम्परा के अनुसार भी 84 सिद्धों में मत्स्येन्द्र या मीननाथ का ही प्रथम स्थान है और इनका समय भी उक्त तिथि के आसपास ही माना जाता है। अतः इस स्थिति से पहले कौल उपादानों वाले किसी भी तन्त्र की प्रवृत्ति नहीं मानी जा सकती।

बौद्ध तन्त्रों में वर्णित उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की प्रक्रिया पर यहाँ दो स्थलों (पृ० 85-92, 466-467) पर विशेष विचार हुआ है। शैव और जैन तन्त्रों की सकलीकरण-पद्धति

---

1. आश्रय-परावृत्ति शब्द पर हुई चर्चा यहाँ पृ. 220-227 पर देखिये।

तथा वैदिक प्रक्रिया में सन्दर्भित और शैव-शाक्त तन्त्रों में विशेष रूप से विवृत "देवो भूत्वा यजेद् देवान्" यह सिद्धान्त, हमें ऐसा लगता है कि ये सब एक ही विषय की ओर इंगित करते हैं। इसी शीर्षक से हमारा [1]संस्कृत निबन्ध और उसका अंग्रेजी अनुवाद भी छपा है। इसमें भूतशुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है, जो कि इष्टदेव की उपासना के समय मनुष्यभाव से देवभाव को प्राप्त करने का सरल उपाय है। इसमें प्राणायाम की मुख्य भूमिका है। महार्थमंजरीकार महेश्वरानन्द ने स्वोपज्ञ टीका में बताया है कि अर्चक को पूजा के प्रारम्भ में ही अपने में अलौकिक शक्ति का आधान करना पड़ता है। कालुष्य के दूर होने से यह संभव होता है। इसके लिये त्रिविध प्राणायाम की सहायता से शोष, दाह और आप्याय की प्रक्रिया को पूरा करना पड़ता है।

शोष का अभिप्राय है संसार के मूल कारण मल को सुखा देना, दाह का अर्थ है वासनाओं के संस्कार को भी जला डालना और आप्याय है अज्ञान के नष्ट हो जाने के साथ ही स्वरूप-साक्षात्कार की अनुभूति से होने वाला आह्लाद। इस तरह शोष, दाह और आप्याय की प्रक्रिया से साधक तेजोमय, सकल पुरुषार्थ के साधक, अत एव इष्टदेव की आराधना के योग्य दिव्य देह को प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया को हम उत्पन्नक्रम की प्रक्रिया के समतुल्य मान सकते हैं। निष्पन्नक्रम को अनुत्तरतन्त्र की विशेषता माना जाता है। कौलिक तन्त्रों में वर्णित सामरस्य स्थिति युगनद्धकाय की प्राप्ति से भिन्न नहीं है।

सकलीकरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल है। इसमें विभिन्न मन्त्रों के अक्षरों का और बीजाक्षरों का देह के विभिन्न अवयवों में और पूरे देह में दिव्यता का आधान करने के लिये विन्यास किया जाता है। शिव के सद्योजात आदि पंचब्रह्म स्वरूप में स्थित 38 कलाओं की अपने शरीर में भावना करना भी सकलीकरण प्रक्रिया का ही अंग है। जैन तन्त्रों की सकलीकरण प्रक्रिया पर प्रकाश डालने वाला तो एक निबन्ध ही यहाँ प्रकाशित हुआ है। विरूपाक्षपंचाशिका की विद्याचक्रवर्तीकृत विवृति (श्लोक 51) में आचार्य योगीश्वर का एक वचन उद्धृत है। उसमें सकलीकरण की अद्वयवादी व्याख्या बताते हुए कहा गया है कि प्रकाशात्मक शिव के साथ विमर्शात्मक शक्ति की कूटस्थ एकात्मकता की प्रत्यभिज्ञा के उदित होने से जो परानन्द का आविर्भाव होता है, उसीका नाम सकलीकरण है। स्पष्ट है, सकलीकरण की यह व्याख्या निष्पन्न-क्रम की निष्पत्ति से भिन्न नहीं है।

---

1. "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" शीर्षक निबन्ध-संग्रह (पृ. 151-164) में "देवो भूत्वा यजेद् देवान्" नामक निबन्ध तथा "रिचुअल एण्ड स्पेक्युलेशन इन अर्ली तान्त्रिज्म" (पृ. 121-138) में इसका अंग्रेजी रूपान्तर देखिये। यह ग्रन्थ फ्रांसीसी विद्वान् डॉ० आन्द्रे पादु के सम्मान में सनी सिरीज में स्टेट युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क से सन् 1992 में छपा है।

आगम-तन्त्रशास्त्र का वैदिक वाङ्मय से किसी प्रकार का संबन्ध है या नहीं, इस विषय में आजकल दो पक्ष प्रचलित हैं। इन दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व इस कार्यशाला में हुआ। वस्तुतः देखा जाय तो ये दोनों स्वभावतः भिन्न प्रकृति के शास्त्र हैं और इनमें ज्येष्ठ-कनिष्ठ भाव पर पर्याप्त लिखा गया है। अन्ततः दोनों का समान प्रामाण्य मान्य हो गया। ऐसा भी समय आया कि बौद्ध, जैन और चार्वाक मत को छोड़ कर सभी मतों को अपनी वेदानुवर्तिता स्वीकृत करनी पड़ी। कौल मत की भी वेदानुवर्तिता सप्रमाण स्थापित की गई। इस प्रक्रिया से अन्ततः बौद्ध, जैन और चार्वाक मत भी अछूते नहीं रह सके। आचार्य शंकर को बौद्ध महायान-गाथित मायावाद का अनुवर्ती माना गया और आचार्य भास्कर को अनेकान्त-पादावनत-शिरोबिम्ब कहा गया। आचार्य अभिनवगुप्त का तो स्पष्ट कथन है कि आगमों के द्वैतवाद, शंकर के मायावाद और बौद्ध योगाचारों के विज्ञानवाद को परिष्कृत कर प्रत्यभिज्ञा दर्शन की उद्भावना की गई है। कामकला के स्वरूप का यदि हम सूक्ष्म निरीक्षण करें, तो उस पर चार्वाक दर्शन की छाया हमें परिलक्षित होगी। चार्वाक दर्शन के ग्रन्थ तत्त्वोपप्लवसिंह के वचन को महार्थमंजरीकार ने उद्धृत किया है।

इसके साथ ही आगम और तन्त्रशास्त्र में तथा बौद्ध और जैन तन्त्रों में भी मन्त्र-पुरश्चरण (पूर्वसेवा) आदि के प्रसंग में अग्निकार्य (हवन) की पूरी प्रक्रिया वैदिक विधि के अनुसार ही संचालित होती है। शैव और वैष्णव आगमों में तो स्पष्ट रूप से वैदिक मन्त्रों का भी मूल रूप में ही ग्रहण हुआ है। इस तरह के विचारों की अभिव्यक्ति इस कार्यशाला की महती उपलब्धि है। इससे इस स्थापना की भी पुष्टि होती है कि इन सभी मतों के तन्तु एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं और यह मत खण्डित हो जाता है कि आगम-तन्त्रशास्त्र का वेदों के साथ किसी भी प्रकार का संबन्ध नहीं है। तान्त्रिक दर्शन की इस विशेषता पर भी हमें ध्यान देना होगा कि यहाँ शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति कम है और दृष्टि-भेद को पर्याप्त संमान दिया गया है। आज इस प्रक्रिया का और विस्तार करने की अपेक्षा है, जिससे कि भारत में विगत एक हजार वर्षों में विकसित विचार भी इसकी परिधि में आ सकें।

विश्वास और अनुग्रह के सिद्धान्त के साथ यहाँ स्वसाक्षात्कार और स्वतन्त्र शक्तिपात के सिद्धान्त पर भी विचार हुआ। शून्यवाद में शून्यता से सब कुछ निकलता है और उसीमें विलीन हो जाता है। उसी तरह से प्रत्यभिज्ञा दर्शन में विश्वोत्तीर्ण शिव ही विश्व का स्वरूप धारण कर लेता है और फिर उसी में सारा विश्व विलीन हो जाता है। जैन सम्प्रदाय की मान्यता है कि सिद्धावस्था में गुणों की अभिव्यक्ति होती है और चतुर्विध शैवमत मुक्ति दशा में शिवभाव की उत्पत्ति, संक्रान्ति, आवेश और अभिव्यक्ति सिद्धान्त के पोषक हैं। "विलयः परमात्मनि"[1] सिद्धान्त को मानने वालों की दृष्टि ऊपर के शून्यता और प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त को

1. परमोक्षनिरासकारिका (श्लो. 2) और उसकी भट्ट रामकण्ठ विरचित व्याख्या देखिये। अष्टप्रकरण (पृ. 279-281), संस्कृत विश्वविद्यालय संस्करण, वाराणसी, सन् 1988.

मानने वालों से बहुत भिन्न नहीं है। सिद्धशिला में सिद्धों की स्थिति, मुद्रा आदि चिह्नों के धारण मात्र से मुक्ति, आम्नाय और दस महाविद्या संबन्धी विचार अपने-अपने हो सकते हैं। उनको उनकी ही दृष्टि से समझने की आवश्यकता है। अपनी दृष्टि उन पर आरोपित करने से कोई समाधान नहीं मिल सकता। इस तरह के कुछ प्रश्न शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति को और प्रश्नों के कुछ समाधान अपने मत के प्रति श्रद्धातिरेक को ही दिखाते हैं। कुछ वक्ताओं का आडम्बरों के प्रति अधिक झुकाव था। अहिंसा सिद्धान्त की सार्वभौमिकता पर भी यहाँ चर्चा हुई, जो कि आज जैन और वैष्णव धर्म का सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है और वैष्णव मत से अनुप्राणित महात्मा गांधी ने अभी जिसकी नई व्याख्या की है। समय-संवर जैसे पारिभाषिक और अष्टमंगल एवं प्रतिसर जैसे लम्बी परम्परा वाले शब्दों पर भी यहाँ विचार हुआ।

आगम और तन्त्रशास्त्र को इस प्रकार की नई दृष्टि देने वाले श्रद्धेयचरण श्री श्री गोपीनाथ कविराज को इस अवसर पर हम शत-शत नमन करते हैं॥

माननेवालों से बहुत भिन्न नहीं है। सिद्धशिला में सिद्धों की स्थिति, मुद्रा आदि चिह्नों के धारण मात्र से मुक्ति, आम्नाय और दस महाविद्या संबन्धी विचार अपने-अपने हो सकते हैं। उनको उनकी ही दृष्टि से समझने की आवश्यकता है। अपनी दृष्टि उन पर आरोपित करने से कोई समाधान नहीं मिल सकता। इस तरह के कुछ प्रश्न शास्त्रार्थ की प्रवृत्ति को और प्रश्नों के कुछ समाधान अपने मत के प्रति श्रद्धातिरेक को ही दिखाते हैं। कुछ वक्ताओं का आडम्बरों के प्रति अधिक झुकाव था। अहिंसा सिद्धान्त की सार्वभौमिकता पर भी यहाँ चर्चा हुई, जो कि आज जैन और वैष्णव धर्म का सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है और वैष्णव मत से अनुप्राणित महात्मा गांधी ने अभी जिसकी नई व्याख्या की है। समय-संवर जैसे पारिभाषिक और अष्टमंगल एवं प्रतिसर जैसे लम्बी परम्परा वाले शब्दों पर भी यहाँ विचार हुआ।

आगम और तन्त्रशास्त्र को इस प्रकार की नई दृष्टि देने वाले श्रद्धेयचरण श्री श्री गोपीनाथ कविराज को इस अवसर पर हम शत-शत नमन करते हैं॥